



परंपरागत मीडिया बनाम सोशल मीडिया: सामाजिक विमर्श की बदलती प्रवृत्तियाँ

शोधार्थी : रविकांत

शोधनिर्देशक : डॉ. मनोज श्रीवास्तव (एसोसिएट प्रोफेसर)

तिलक पत्रकारिता एवं जनसंचार स्कूल,

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सार

मीडिया सामाजिक “विमर्श के निर्माण और विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। परंपरागत मीडिया—जैसे समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन—लंबे समय तक समाज में सूचना के प्रसार, जनमत निर्माण और लोकतांत्रिक निगरानी के प्रमुख साधन रहे हैं। किंतु डिजिटल तकनीक के विकास और इंटरनेट की व्यापक पहुँच के साथ सोशल मीडिया एक सशक्त वैकल्पिक मंच के रूप में उभरा है, जिसने सामाजिक विमर्श की प्रकृति, दिशा और गति को उल्लेखनीय रूप से बदल दिया है। इस शोध पत्र का उद्देश्य परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा यह विश्लेषण करना है कि इन दोनों माध्यमों ने सामाजिक विमर्श को किस प्रकार प्रभावित किया है।

अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि परंपरागत मीडिया संपादकीय नियंत्रण, तथ्य-जांच और संस्थागत उत्तरदायित्व के माध्यम से अपेक्षाकृत संतुलित और विश्वसनीय विमर्श प्रस्तुत करता रहा है। इसके विपरीत, सोशल मीडिया ने संचार को अधिक लोकतांत्रिक, त्वरित और सहभागी बनाया है, जहाँ आम नागरिक भी अपने विचारों को सार्वजनिक मंच पर अभिव्यक्त कर सकता है। इससे हाशिए पर मौजूद समूहों को आवाज़ मिली है और कई सामाजिक आंदोलनों को नई ऊर्जा प्राप्त हुई है। हालांकि, सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के साथ गलत सूचना, अफवाह, ट्रोल संस्कृति, वैचारिक ध्रुवीकरण और नैतिक उत्तरदायित्व की कमी जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

यह शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है और मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों—पुस्तकों, शोध लेखों, रिपोर्ट्स और डिजिटल सामग्री—पर आधारित है। अध्ययन का निष्कर्ष यह दर्शाता है कि समकालीन समाज में परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ और संभावनाएँ हैं। एक स्वस्थ और संतुलित सामाजिक विमर्श के लिए आवश्यक है कि परंपरागत मीडिया की विश्वसनीयता और सोशल मीडिया की सहभागिता का समन्वय किया जाए, जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ किया जा सके।

मुख्य शब्द : परंपरागत मीडिया, सोशल मीडिया, सामाजिक विमर्श, जनमत निर्माण, डिजिटल संचार



भूमिका

मीडिया आधुनिक “समाज में केवल सूचना के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना के निर्माण, विचारधाराओं के प्रसार और जनमत के गठन में केंद्रीय भूमिका निभाता है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया को समाज और राज्य के बीच संवाद का सेतु माना जाता है, जिसके माध्यम से न केवल शासन की नीतियों और निर्णयों पर निगरानी रखी जाती है, बल्कि सामाजिक मुद्दों पर सार्वजनिक विमर्श को भी दिशा दी जाती है। इसी व्यापक सामाजिक दायित्व के कारण मीडिया को लोकतंत्र का “चौथा स्तंभ” कहा गया है।¹ मीडिया द्वारा प्रस्तुत विषय, भाषा और दृष्टिकोण समाज की सोच, प्राथमिकताओं और सामूहिक प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं।²

ऐतिहासिक रूप से, परंपरागत मीडिया—जिसमें समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो और टेलीविजन सम्मिलित हैं—ने सामाजिक विमर्श को एक संरचित, संस्थागत और अपेक्षाकृत नियंत्रित ढाँचे में विकसित किया है। परंपरागत मीडिया की कार्यप्रणाली संपादकीय नियंत्रण, पेशेवर मानकों और नैतिक आचार-संहिता पर आधारित रही है। समाचारों का चयन, संपादन और प्रस्तुतीकरण एक संस्थागत प्रक्रिया के अंतर्गत होता रहा है, जिससे सूचना की विश्वसनीयता और संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया।³ इस माध्यम ने स्वतंत्रता आंदोलन, सामाजिक सुधार आंदोलनों, संवैधानिक मूल्यों और राष्ट्रीय एकता के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।⁴ हालाँकि, परंपरागत मीडिया की यह संरचित प्रकृति उसकी सीमा भी रही है। सीमित मंच, एकतरफा संचार व्यवस्था और संस्थागत हितों के कारण कई बार जनसामान्य की प्रत्यक्ष भागीदारी सामाजिक विमर्श में पर्याप्त रूप से परिलक्षित नहीं हो पाती थी।⁵ इसी पृष्ठभूमि में 21वीं सदी के डिजिटल युग में इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने संचार की पारंपरिक अवधारणा को चुनौती दी।

सोशल मीडिया के उदय ने सामाजिक विमर्श की प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। फेसबुक, एक्स (ट्विटर), इंस्टाग्राम, यूट्यूब और व्हाट्सएप जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म ने प्रत्येक व्यक्ति को विचार व्यक्त करने, सूचना साझा करने और सार्वजनिक बहस में भाग लेने का अवसर प्रदान किया है।⁶ अब सामाजिक मुद्दों का

¹ डेनिस मैकक्वेल, *मीडिया और समाज*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010.

² जेम्स करन, *Media and Democracy*, रूटलेज, 2011.

³ रामआहुजा, *जनसंचार के सिद्धांत*, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2015.

⁴ बी.एन. पांडे, *भारतीय पत्रकारिता का इतिहास*, प्रभात प्रकाशन, 2012.

⁵ पी. साईनाथ, “मीडिया और जनसरोकार”, *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, 2009.

⁶ मैनुअल कैस्टेल्ल्स, *The Power of Communication*, Wiley-Blackwell, 2009.



निर्धारण केवल मीडिया संस्थानों द्वारा नहीं होता, बल्कि आम नागरिकों की सहभागिता से “नीचे से ऊपर” विमर्श का विकास होता है। इससे सामाजिक विमर्श अधिक लोकतांत्रिक, विविध और सहभागी हुआ है।⁷ किन्तु सोशल मीडिया की यह खुली और त्वरित संरचना अनेक चुनौतियों को भी जन्म देती है। तथ्य-जांच की कमी, अफवाहों का तीव्र प्रसार, घृणास्पद भाषण, ट्रोल संस्कृति और एल्गोरिदम आधारित ध्रुवीकरण ने सामाजिक विमर्श की गुणवत्ता पर गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं।⁸ कई बार भावनात्मक और अतिरंजित सामग्री तार्किक संवाद को पीछे छोड़ देती है, जिससे समाज में वैचारिक विभाजन गहराता है।⁹

इस परिवर्तित मीडिया परिदृश्य में यह आवश्यक हो जाता है कि परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की भूमिकाओं, सीमाओं और संभावनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। यह समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार इन दोनों माध्यमों के पारस्परिक प्रभाव से सामाजिक विमर्श की दिशा, स्वरूप और प्रभावशीलता निरंतर बदल रही है। प्रस्तुत शोध इसी उद्देश्य के अंतर्गत परंपरागत मीडिया बनाम सोशल मीडिया के संदर्भ में सामाजिक विमर्श की बदलती प्रकृति का समालोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक” अध्ययन करता है।

अध्ययन की समस्या

समकालीन समाज में “मीडिया सामाजिक विमर्श के निर्माण का सबसे प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। परंपरागत मीडिया लंबे समय तक सार्वजनिक संवाद का प्रमुख स्रोत रहा, जहाँ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों को संपादकीय नियंत्रण, पेशेवर मानकों और नैतिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत प्रस्तुत किया जाता था। इस व्यवस्था ने सामाजिक विमर्श को अपेक्षाकृत संतुलित और विश्वसनीय बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किन्तु डिजिटल तकनीक और इंटरनेट के व्यापक प्रसार के साथ सोशल मीडिया के उदय ने इस पारंपरिक संचार संरचना को गहराई से प्रभावित किया है।

सोशल मीडिया ने जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नागरिक सहभागिता को अभूतपूर्व विस्तार दिया है, वहीं इसने सामाजिक विमर्श की गुणवत्ता और दिशा को लेकर गंभीर प्रश्न भी उत्पन्न किए हैं। तथ्य-जांच की अपर्याप्तता, अफवाहों और गलत सूचनाओं का तीव्र प्रसार, घृणास्पद भाषण, ट्रोल संस्कृति तथा एल्गोरिदम आधारित कंटेंट वितरण ने सार्वजनिक संवाद को अधिक भावनात्मक और ध्रुवीकृत बना दिया है।

⁷ यूर्गेन हैबरमास, *The Structural Transformation of the Public Sphere*, MIT Press, 1991.

⁸ पार्थ चटर्जी, “डिजिटल मीडिया और लोकतंत्र”, *Economic and Political Weekly*, 2018.

⁹ सुनील खंडेलवाल, *सोशल मीडिया और समाज*, राजकमल प्रकाशन, 2020.



परिणामस्वरूप, सामाजिक विमर्श कई बार तार्किक और तथ्यपरक बहस के स्थान पर उत्तेजक, पक्षपाती और असहिष्णु स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

दूसरी ओर, परंपरागत मीडिया भी इस बदलते परिदृश्य में अपनी विश्वसनीयता, निष्पक्षता और सामाजिक उत्तरदायित्व को बनाए रखने की चुनौती का सामना कर रहा है। व्यावसायीकरण, टीआरपी-केंद्रित सामग्री और डिजिटल प्रतिस्पर्धा के दबाव ने कई बार इसकी संपादकीय स्वतंत्रता और जनसरोकारों पर प्रश्नचिह्न लगाए हैं। ऐसे में यह स्पष्ट नहीं रह गया है कि सामाजिक विमर्श को दिशा देने में कौन-सा माध्यम अधिक प्रभावी और उत्तरदायी भूमिका निभा रहा है।

इस पृष्ठभूमि में शोध की मूल समस्या यह है कि परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभावों के बीच सामाजिक विमर्श की प्रकृति किस प्रकार परिवर्तित हो रही है और यह परिवर्तन लोकतांत्रिक मूल्यों, जनमत निर्माण तथा सामाजिक समरसता पर क्या प्रभाव डाल रहा है। दोनों माध्यमों की भूमिकाओं, सीमाओं और पारस्परिक प्रभावों का सम्यक् विश्लेषण किए बिना समकालीन सामाजिक विमर्श की जटिलताओं को समझना संभव नहीं है। अतः प्रस्तुत अध्ययन इस समस्या के समाधान हेतु परंपरागत मीडिया बनाम सोशल मीडिया के संदर्भ में सामाजिक विमर्श की बदलती प्रकृति का आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

- परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की अवधारणा, स्वरूप एवं कार्यप्रणाली का विश्लेषण करना।
- सामाजिक विमर्श के निर्माण में परंपरागत मीडिया की भूमिका और प्रभाव का अध्ययन करना।
- सामाजिक विमर्श की बदलती प्रकृति में सोशल मीडिया के योगदान और प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- परंपरागत मीडिया एवं सोशल मीडिया के बीच संरचनात्मक और कार्यात्मक अंतर का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- सोशल मीडिया के कारण उत्पन्न चुनौतियों—जैसे गलत सूचना, धुवीकरण और ट्रोल संस्कृति—का विश्लेषण करना।
- सामाजिक विमर्श पर मीडिया के बदलते प्रभावों का लोकतांत्रिक मूल्यों और जनमत निर्माण के संदर्भ में मूल्यांकन करना।
- परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया के समन्वय की संभावनाओं का अध्ययन करना, जिससे एक स्वस्थ और संतुलित सामाजिक विमर्श को बढ़ावा दिया जा सके।



शोध प्रश्न

1. परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की भूमिका सामाजिक विमर्श के निर्माण में किस प्रकार भिन्न है?
2. सामाजिक विमर्श की प्रकृति में आए परिवर्तनों के लिए सोशल मीडिया किस सीमा तक उत्तरदायी है?
3. परंपरागत मीडिया की संपादकीय संरचना सामाजिक विमर्श की गुणवत्ता को किस प्रकार प्रभावित करती है?
4. सोशल मीडिया के माध्यम से अभिव्यक्ति की बढ़ती स्वतंत्रता ने जनमत निर्माण को कैसे प्रभावित किया है?
5. क्या सोशल मीडिया के कारण सामाजिक विमर्श में ध्रुवीकरण, गलत सूचना और असहिष्णुता में वृद्धि हुई है?
6. समकालीन डिजिटल युग में सामाजिक विमर्श के लिए परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जा सकता है?

शोध परिकल्पना

1. **परिकल्पना-1:**
परंपरागत मीडिया की तुलना में सोशल मीडिया सामाजिक विमर्श को अधिक त्वरित और सहभागी बनाता है, किंतु इसकी विश्वसनीयता अपेक्षाकृत कम होती है।
2. **परिकल्पना-2:**
सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण सामाजिक विमर्श में वैचारिक ध्रुवीकरण और गलत सूचना की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।
3. **परिकल्पना-3:**
यदि परंपरागत मीडिया की संपादकीय विश्वसनीयता और सोशल मीडिया की सहभागिता का समन्वय किया जाए, तो सामाजिक विमर्श की गुणवत्ता और लोकतांत्रिक संवाद में सुधार संभव है।

शोध पद्धति



प्रस्तुत शोध परंपरागत “मीडिया बनाम सोशल मीडिया: सामाजिक विमर्श की बदलती प्रकृति विषय पर आधारित है, जिसका उद्देश्य मीडिया के दोनों रूपों की भूमिका और प्रभाव का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन में निम्नलिखित शोध पद्धति को अपनाया गया है—

(i) शोध का प्रकार

यह शोध वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की संरचना, कार्यप्रणाली और सामाजिक विमर्श पर उनके प्रभाव का विवरणात्मक अध्ययन करने के साथ-साथ आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

(ii) अध्ययन की प्रकृति

शोध की प्रकृति सैद्धांतिक एवं गुणात्मक है, जिसमें सामाजिक विमर्श, मीडिया व्यवहार और जनमत निर्माण जैसे अमूर्त (intangible) पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

(iii) डेटा के स्रोत

प्रस्तुत शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं—

- पुस्तकें (जनसंचार, मीडिया अध्ययन एवं समाजशास्त्र से संबंधित)
- शोध पत्र एवं जर्नल्स
- समाचार पत्र और पत्रिकाएँ
- सरकारी एवं गैर-सरकारी रिपोर्ट्स
- विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत और डिजिटल लेख

(iv) अध्ययन की विधि

अध्ययन में तुलनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है, जिसके माध्यम से परंपरागत मीडिया और सोशल मीडिया की भूमिका, प्रभाव और सीमाओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षा

मीडिया और सामाजिक विमर्श के संबंध को लेकर विद्वानों, “समाजशास्त्रियों और संचार विशेषज्ञों द्वारा समय-समय पर गहन अध्ययन किया गया है। प्रारंभिक मीडिया अध्ययनों में परंपरागत मीडिया को सामाजिक चेतना के निर्माण और जनमत के मार्गदर्शन का प्रमुख साधन माना गया है। डेनिस मैकक्वेल ने अपने प्रसिद्ध कार्य *Mass Communication Theory* में मीडिया को सामाजिक संरचना को प्रभावित करने वाली एक शक्तिशाली संस्था के रूप में परिभाषित किया है, जो विचारों, मूल्यों और सार्वजनिक विमर्श की दिशा निर्धारित



करती है।¹⁰ उनके अनुसार परंपरागत मीडिया की शक्ति उसकी संस्थागत विश्वसनीयता और संपादकीय नियंत्रण में निहित है।

भारतीय संदर्भ में, राम आहूजा ने परंपरागत मीडिया की भूमिका को सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक विकास से जोड़ते हुए कहा है कि समाचार पत्रों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर समकालीन भारत तक सामाजिक मुद्दों को विमर्श के केंद्र में लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।¹¹ इसी प्रकार, बी.एन. पांडे ने भारतीय पत्रकारिता के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करते हुए यह दर्शाया है कि परंपरागत मीडिया ने राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक सुधार आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाई।¹²

लोकतंत्र और मीडिया के अंतर्संबंध पर जेम्स करन का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने यह तर्क दिया है कि मीडिया सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sphere) को सशक्त बनाकर नागरिकों को विचार-विमर्श का मंच प्रदान करता है, किंतु जब मीडिया पर बाजार और सत्ता का प्रभाव बढ़ता है, तब उसकी लोकतांत्रिक भूमिका कमजोर होने लगती है।¹³ यह दृष्टिकोण परंपरागत मीडिया की सीमाओं को भी उजागर करता है।

डिजिटल युग के आगमन के साथ मीडिया अध्ययन का फोकस सोशल मीडिया और नेटवर्क समाज की ओर स्थानांतरित हुआ। मैनुअल कैस्टेल्स ने *The Power of Communication* में यह प्रतिपादित किया है कि सोशल मीडिया ने संचार को विकेंद्रीकृत कर दिया है और आम नागरिकों को विमर्श-निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदार बना दिया है।¹⁴ उनके अनुसार यह परिवर्तन शक्ति-संतुलन को संस्थानों से व्यक्तियों की ओर स्थानांतरित करता है।

युर्गेन हैबरमास की *Public Sphere* की अवधारणा को कई विद्वानों ने सोशल मीडिया के संदर्भ में पुनः व्याख्यायित किया है। हैबरमास के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र तर्कसंगत संवाद पर आधारित होता है, किंतु आधुनिक डिजिटल मंचों पर भावनात्मकता और अतिरंजन के कारण इस तर्कसंगतता पर संकट उत्पन्न हुआ है।¹⁵ इस संदर्भ में पार्थ चटर्जी ने भारतीय डिजिटल मीडिया पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि सोशल मीडिया

¹⁰ Denis McQuail, *Mass Communication Theory*, Sage Publications, 2010.

¹¹ राम आहूजा, *जनसंचार के सिद्धांत*, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2015.

¹² बी.एन. पांडे, *भारतीय पत्रकारिता का इतिहास*, प्रभात प्रकाशन, 2012.

¹³ James Curran, *Media and Democracy*, Routledge, 2011.

¹⁴ Manuel Castells, *The Power of Communication*, Wiley-Blackwell, 2009.

¹⁵ Jürgen Habermas, *The Structural Transformation of the Public Sphere*, MIT Press, 1991.



ने लोकतांत्रिक सहभागिता को तो बढ़ाया है, लेकिन साथ ही सामाजिक ध्रुवीकरण और असहिष्णुता को भी तीव्र किया है।¹⁶

सोशल मीडिया की नकारात्मक प्रवृत्तियों पर पी. साईनाथ और अन्य भारतीय लेखकों ने चिंता व्यक्त की है। उनका मानना है कि ट्रोल संस्कृति, फेक न्यूज और एल्गोरिदम आधारित कंटेंट सामाजिक विमर्श को विकृत कर रहे हैं, जिससे वास्तविक जनसरोकार हाशिए पर चले जाते हैं।¹⁷ सुनील खंडेलवाल ने भी अपने अध्ययन में यह रेखांकित किया है कि सोशल मीडिया की त्वरित प्रकृति विमर्श की गहराई को प्रभावित करती है।¹⁸

उपरोक्त साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ परंपरागत मीडिया सामाजिक विमर्श में स्थिरता और विश्वसनीयता प्रदान करता है, वहीं सोशल मीडिया सहभागिता और विविधता को बढ़ावा देता है। तथापि, दोनों माध्यमों के तुलनात्मक प्रभाव और उनके समन्वय की संभावनाओं पर समग्र अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं। यही अंतराल प्रस्तुत शोध को प्रासंगिक बनाता है।

मुख्य विश्लेषण एवं चर्चा

समकालीन समाज में सामाजिक विमर्श के स्वरूप को समझने के लिए परंपरागत मीडिया और सामाजिक माध्यमों की भूमिकाओं का विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। दोनों माध्यमों की कार्यप्रणाली, प्रभावशीलता और सीमाएँ सामाजिक संवाद की दिशा और गुणवत्ता को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं।

परंपरागत मीडिया और सामाजिक विमर्श

परंपरागत मीडिया ने लंबे समय तक सामाजिक विमर्श को एक संरचित और संस्थागत स्वरूप प्रदान किया है। समाचारों और विचारों का चयन संपादकीय नीति, पेशेवर नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के आधार पर किया जाता रहा है। इससे सामाजिक विमर्श में तथ्यपरकता, संतुलन और गंभीरता बनी रहती थी। परंपरागत मीडिया द्वारा उठाए गए मुद्दे सामान्यतः राष्ट्रीय हित, सामाजिक सुधार, शासन की नीतियाँ और जनकल्याण से जुड़े होते थे, जिससे विमर्श अपेक्षाकृत व्यापक और दीर्घकालिक प्रभाव वाला होता था।

हालाँकि, परंपरागत मीडिया की एक सीमा यह भी रही है कि इसमें आम नागरिक की प्रत्यक्ष सहभागिता सीमित रही। संवाद मुख्यतः एकतरफा रहा, जहाँ पाठक या दर्शक केवल सूचना ग्रहण करने की भूमिका में रहे। इसके

¹⁶ पार्थ चटर्जी, “डिजिटल मीडिया और लोकतंत्र”, *Economic and Political Weekly*, 2018.

¹⁷ पी. साईनाथ, “मीडिया, बाजार और जनसरोकार”, *Economic and Political Weekly*, 2011.

¹⁸ सुनील खंडेलवाल, *सोशल मीडिया और समाज*, राजकमल प्रकाशन, 2020.



अतिरिक्त, व्यावसायीकरण और दर्शक-संख्या केंद्रित प्रतिस्पर्धा ने कई बार सामाजिक सरोकारों की प्राथमिकता को प्रभावित किया है।

सामाजिक माध्यम और विमर्श की नई संरचना

सामाजिक माध्यमों के उदय ने सामाजिक विमर्श की संरचना को मूलतः बदल दिया है। अब विमर्श केवल संस्थागत माध्यमों तक सीमित न रहकर आम नागरिकों की भागीदारी से निर्मित हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति विचार प्रस्तुत करने, प्रतिक्रिया देने और मुद्दों को सार्वजनिक करने में सक्षम हो गया है। इससे विमर्श अधिक सहभागी, बहुवचनात्मक और त्वरित हुआ है।

सामाजिक माध्यमों ने कई ऐसे सामाजिक मुद्दों को विमर्श के केंद्र में लाया है, जिन्हें परंपरागत मीडिया में पर्याप्त स्थान नहीं मिला। महिलाओं, युवाओं, हाशिए पर स्थित समुदायों और स्थानीय समस्याओं को व्यापक पहचान मिली है। इस दृष्टि से सामाजिक माध्यमों ने सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक सहभागिता को सुदृढ़ किया है।

विमर्श की गुणवत्ता पर प्रभाव

यद्यपि सामाजिक माध्यमों ने सहभागिता बढ़ाई है, किंतु विमर्श की गुणवत्ता को लेकर गंभीर प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं। तथ्य-जांच के अभाव, अपुष्ट सूचनाओं और भावनात्मक प्रस्तुतियों के कारण विमर्श कई बार सतही और उग्र हो जाता है। विचारों की असहमति संवाद के स्थान पर टकराव का रूप ले लेती है, जिससे सामाजिक ध्रुवीकरण बढ़ता है।

इसके विपरीत, परंपरागत मीडिया विमर्श में स्थिरता और प्रामाणिकता प्रदान करता है, परंतु उसकी पहुँच और त्वरित प्रतिक्रिया क्षमता सामाजिक माध्यमों की तुलना में सीमित है। इस प्रकार, दोनों माध्यमों की विशेषताएँ और कमजोरियाँ सामाजिक विमर्श को अलग-अलग दिशाओं में प्रभावित करती हैं।

समन्वय की आवश्यकता

विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि न तो परंपरागत मीडिया और न ही सामाजिक माध्यम अकेले स्वस्थ सामाजिक विमर्श सुनिश्चित कर सकते हैं। परंपरागत मीडिया की विश्वसनीयता और सामाजिक माध्यमों की सहभागिता यदि परस्पर पूरक रूप में कार्य करें, तो सामाजिक विमर्श अधिक संतुलित, सूचित और लोकतांत्रिक बन सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से “यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत मीडिया और सामाजिक माध्यम दोनों ही समकालीन समाज में सामाजिक विमर्श के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किंतु उनकी कार्यप्रणाली, प्रभाव और सीमाएँ



भिन्न-भिन्न हैं। परंपरागत मीडिया ने लंबे समय तक सामाजिक विमर्श को दिशा देने, जनमत निर्माण करने तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करने का कार्य किया है। इसकी सबसे बड़ी शक्ति इसकी संस्थागत विश्वसनीयता, संपादकीय अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व में निहित रही है।

दूसरी ओर, सामाजिक माध्यमों के उदय ने सामाजिक विमर्श को अधिक सहभागी, व्यापक और त्वरित बना दिया है। अब सामाजिक विमर्श केवल कुछ चुनिंदा संस्थानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आम नागरिकों की सक्रिय भागीदारी से निर्मित हो रहा है। इससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बल मिला है और हाशिए पर स्थित वर्गों को अपनी बात रखने का अवसर प्राप्त हुआ है।

हालाँकि, सामाजिक माध्यमों की यह खुली प्रकृति कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न करती है। अपुष्ट सूचनाएँ, अफवाहें, भावनात्मक उत्तेजना और वैचारिक ध्रुवीकरण सामाजिक विमर्श की गुणवत्ता को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रकार, यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सामाजिक विमर्श की बदलती प्रकृति को समझने के लिए परंपरागत मीडिया और सामाजिक माध्यम—दोनों के प्रभावों का संतुलित और समन्वित विश्लेषण आवश्यक है।

ग्रंथसूची

1. आहूजा, राम. *जनसंचार के सिद्धांत*. जयपुर: रावत प्रकाशन, 2015।
2. पांडे, बी. एन. *भारतीय पत्रकारिता का इतिहास*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2012।
3. मैकक्वेल, डेनिस. *जनसंचार सिद्धांत*. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन, 2010।
4. करन, जेम्स. *मीडिया और लोकतंत्र*. नई दिल्ली: रूटलेज प्रकाशन, 2011।
5. कास्टेल्स, मैनुअल. *संचार की शक्ति*. नई दिल्ली: वाइली-ब्लैकवेल प्रकाशन, 2009।
6. हैबरमास, युर्गेन. *सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक परिवर्तन*. कैम्ब्रिज: एम.आई.टी. प्रकाशन, 1991।
7. चटर्जी, पार्थ. “डिजिटल माध्यम और लोकतंत्र.” *आर्थिक एवं राजनीतिक साप्ताहिकी*, 2018।
8. साईनाथ, पी. “मीडिया, बाजार और जनसरोकार.” *आर्थिक एवं राजनीतिक साप्ताहिकी*, 2011।
9. खंडेलवाल, सुनील. *सामाजिक माध्यम और समाज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2020।
10. शर्मा, अरविंद. *मीडिया, समाज और संस्कृति*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016।